प्रोफेसर आर. गोविन्दा के साथ यह बातचीत शिक्षक से संबंधित विभिन्न नीतिगत पहलुओं पर ध्यान केन्द्रित करती है। शिक्षा के अधिकार कानून आने के बाद इससे शिक्षक की स्थिति में क्या फर्क आएगा, शिक्षकों की पेशेवर तैयारी, शिक्षकों के लिए सतत अकादमिक समर्थन, आदि इस बातचीत के केंद्रीय मुद्दे हैं। अध्यापक के बारे में नीतिगत दस्तावेजों के विचार और उनके क्रियान्वयन पर भी विस्तार से चर्चा की गई है। शिक्षकों की तैयारी में विश्वविद्यालयों की भूमिका, विभिन्न राज्यों में शिक्षक की सेवा शर्तें, शिक्षा नीतियों को लेकर केन्द्र एवं राज्य सरकारों के बीच संबंध और दलगत राजनीति के प्रभाव जैसे मुद्दों पर भी बातचीत की गई।

उनका कहना है कि हमारे यहां शिक्षा की स्थिति इसलिए खराब नहीं है कि नीतियों का क्रियान्वयन सही तरीके से नहीं हुआ बल्कि इन नीतियों में ही समस्याएं हैं। शिक्षकों की स्थिति में तब तक बदलाव नहीं आएगा जब तक कि उनकी योग्यताएं, सेवा शर्तें तय नहीं होंगी और उनकी पेशेवर तैयारी तथा सतत अकादमिक समर्थन पर सरकारें निवेश नहीं करेंगी।

शिक्षा का अधिकार कानून और शिक्षक

प्रोफेसर आर. गोविन्दा से हुमा अंसारी की बातचीत

आर. गोविन्दा

अनेक राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय निकायों के सदस्य हैं और वर्तमान में राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय, नई दिल्ली के उप-कुलपति हैं।

हुमा अंसारी

टाटा समाज विज्ञान संस्थान, मुम्बई से समाज कार्य में स्नातकोत्तर के बाद दिगन्तर, जयपुर में असिस्टेन्ट फैलो के तौर पर कार्यरत हैं।

प्रश्न : भारत में आजादी के पहले से शिक्षक को लेकर एक लम्बा विमर्श रहा है। शैक्षिक चिन्तन और शिक्षा के नीतिगत दस्तावेजों में भी शिक्षक की अहम् भूमिका को स्वीकार किया जाता रहा है। आज के साक्षात्कार में हम मुख्यतः आजादी के बाद शिक्षक के बारे में नीतिगत दस्तावेजों में क्या सोचा गया है और धरातल पर इसका क्रियान्वयन किस तरह से हुआ है, इस संदर्भ में चर्चा करेंगे। चर्चा की शुरुआत शिक्षा के अधिकार कानून से करना चाहेंगे। शिक्षक के संदर्भ में इस कानून के निहितार्थों को आप किस तरह देखते हैं?

उत्तर : इस कानून में एक तरफ कहा गया है कि शिक्षक को बच्चों के साथ किस तरह बरताव करना चाहिए, बच्चों के साथ भेदभाव नहीं करना चाहिए, दण्ड नहीं देना चाहिए, उत्पीड़न नहीं होना चाहिए और स्कूल में बच्चे डरे हुए नहीं हों। यानी, बच्चों के साथ क्या नहीं करना चाहिए या कक्षा-कक्ष में किस तरह से व्यवहार करना चाहिए। दूसरी तरफ कहा गया है कि शिक्षक की स्कूल में क्या जिम्मेदारियां हैं। उसे स्कूल में प्रतिदिन कितने घंटे और साल में कितने दिन पढ़ाना है। शिक्षकों से काफी शिकायतें होती हैं कि शिक्षक स्कूल में नहीं आते और आते हैं तो पढ़ाते नहीं हैं। मुझे ये दोनों बातें बहुत महत्त्वपूर्ण लगती हैं। स्कूल में बच्चों का टाइम-टेबल होता है। शिक्षकों के लिए भी इसी तरह का अनुशासन होना चाहिए। शिक्षक पर भी कुछ बंधन होने चाहिएं, तभी बच्चों में अनुशासन आ सकता है। हमारे ही नहीं सभी देशों के शिक्षाक्रम यह सुझाते हैं कि किस विषय में कितने घंटे का कक्षा शिक्षण होना चाहिए। क्या हमारे स्कूलों में उतना शिक्षण होता है? शिक्षक के लिए ये दोनों तरह की जिम्मेदारियां बहुत महत्त्वपूर्ण हैं और ये दोनों एक-दूसरे से जुड़ी हैं। इस कानून में इन दोनों पर बल दिया गया है।

यह कानून कैसे लागू होगा, इसकी निगरानी कैसे करेंगे, शिक्षक इसके अनुसार काम करेंगे या नहीं; यह भविष्य में पता चलेगा लेकिन कानून को बड़े पैमाने पर लागू करने के बजाय हर बच्चे, हर कक्षा और हर स्कूल के स्तर पर लागू करके देखना चाहिए। सीखने-सिखाने के लिए स्थितियां और सुविधाएं माकूल हैं या नहीं और शिक्षकों का उन्मुखीकरण कैसा हो, हमारे यहां इस पर कम चर्चा होती है। हमारे यहां एक बार शिक्षक बनने का प्रशिक्षण देकर और फिर हर साल स्कूलों में पढ़ा रहे अध्यापकों के लिए बीस दिन का प्रशिक्षण कार्यक्रम चला कर यह मान लेते हैं कि शिक्षकों की तैयारी पूरी हो गई है। लेकिन शिक्षकों में जो परिवर्तन आना चाहिए वह नहीं आता। देखिए, यह मानना होगा कि शिक्षक बनना एक तरह का रोजगार है। सभी तरह के लोग शिक्षक बनते हैं। अच्छे लोग भी शिक्षक बनते हैं। हमारे देश में शिक्षक की जिम्मेदारी, उनके लक्ष्य, बच्चों को प्यार से पढ़ाने, आदि की बजाय परीक्षा में बच्चों के प्रदर्शन पर ज्यादा ध्यान दिया जाता है। इसी तरह अध्यापकों की तैयारी में भी प्रशिक्षण प्रमाण पत्र पर ज्यादा ध्यान दिया जाता है। मेरा मानना है कि इस कानून को अच्छी तरह लागू करने के लिए शिक्षक पर बहुत निवेश करना पड़ेगा। दस-पांच दिन के प्रशिक्षणों से किसी तरह का बदलाव नहीं आएगा। शिक्षकों के नजरिए और मूलभूत मनोभावों में परिवर्तन लाना होगा। इसके लिए शिक्षक के साथ ज्यादा वक्त लगाना पड़ेगा। अध्यापक बनाने की तैयारी के लिए चलाए जाने वाले बी.एड़. के कोर्स और अध्यापक बनने के बाद होने वाले सेवाकालीन प्रशिक्षणों में यहां गंभीर तरीके से काम नहीं होता। प्रशासन भी इसके बारे में गंभीर नहीं है।

एक समय था जब शिक्षा व्यवस्था केवल अभिजात वर्ग के लिए मुहैया थी, तब की बात और थी। आज समाज के सभी तबकों के बच्चे स्कूल आते हैं। समावेशी स्कूल बनने से कक्षा में विविधता बढ़ती है और इससे जटिलता भी बढ़ती है। शिक्षकों में भी विविधता बढ़ी है लेकिन हम इसे मानने के लिए तैयार नहीं हैं। समावेशी स्कूल बनाने के लिए इसे पहचानना चाहिए। विविधता की समस्या से कैसे निपटा जाए, इसके बारे में सोचने की जरूरत है। लेकिन हमारे पास इसके लिए कोई नीति और कार्यक्रम नहीं है। हमारे मन में अभी भी शिक्षक की एक मध्यम वर्गीय रोमानी छवि है और हम उसे ही पकड़े बैठे हैं क्योंकि हमारे बच्चे मध्यम वर्गीय स्कूल में ही जाते हैं।

प्रश्न : आपने कहा कि हमारे यहां शिक्षक की तैयारी पर ध्यान नहीं दिया जाता। चट्टोपाध्याय समिति का गठन 1983 में हुआ था। इससे पहले कई शिक्षा आयोग अपनी अनुशंसाएं दे चुके थे। क्या वजह है कि अध्यापक को शिक्षा के केन्द्र में मानने के बावजूद भारत में उस पर एक स्वतंत्र आयोग का

गठन आजादी के 35-36 साल बाद हो पाया?

उत्तर : शिक्षक पर स्वतंत्र आयोग का आजादी के 35 साल बाद गठित होना महत्त्वपूर्ण नहीं है। इससे पहले के शिक्षा आयोगों ने अध्यापक के बारे में बहुत कुछ कहा है। कोठारी आयोग तो यहां से शुरू करता है कि देश की नियति कक्षा में आकार ग्रहण करती है। आप चाहे राधाकृष्णनन आयोग, मुदालियार आयोग और यहां तक कि पंचवर्षीय योजनाएं देख लीजिए; सभी शिक्षक को बहुत ही महत्त्वपूर्ण मानते हैं। मेरे हिसाब से समय का कोई खास महत्त्व नहीं है। हां, यह सही है कि शिक्षक पर विचार करने के लिए 1983 में चट्टोपाध्याय आयोग को अलग से बनाया गया जो महत्त्वपूर्ण है। इसका प्रभाव 1986 की शिक्षा नीति पर पड़ा है।

प्रश्न : आप चट्टोपाध्याय आयोग की अनुशंसाओं का 1986 की शिक्षा नीति पर किस तरह का प्रभाव देखते हैं?

उत्तर : इस नीति पर चट्टोपाध्याय आयोग का काफी असर हुआ है। लेकिन ऐसा नहीं है कि शिक्षक के लिए एक अलग आयोग बना देने से शिक्षक की स्थिति सुधर जाएगी। चट्टोपाध्याय समिति ने बहुत कुछ कहा है लेकिन नीतिगत दस्तावेज में जो कहा जाता है उससे वास्तविक नीति को अलग करके देखना चाहिए। यानी, दस्तावेज को नीति से अलग करके देखना चाहिए। दस्तावेज तो लगातार बनते रहते हैं। हमारी वास्तविक नीति तो कार्यक्रम के साथ जुड़ी होती है। 1986 की नीति के बाद कोई ठोस कार्यक्रम तो बना नहीं जिससे उस नीति में जो कहा गया है उसे लागू करके दिखाया जा सकता। 1986 की नीति के बाद पहली बार प्रोग्राम ऑफ एक्शन बनाया गया। जैसे, उसमें लिखा था कि शिक्षक बनने वालों में पचास प्रतिशत महिलाएं होनी चाहिएं। यह एक उदाहरण है। असली नीति तो लागू करते समय बनती है।

1986 की शिक्षा नीति में तो कहीं नहीं लिखा है कि विश्व बैंक या अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं से पैसा लेकर आरंभिक शिक्षा में सुधार करना चाहिए। लेकिन हमारे यहां 1992 से विश्व बैंक से पैसा लेना शुरू कर दिया और अब वे हमारे काम को नियंत्रित कर रहे हैं।

हमारे देश में नीतिगत दस्तावेजों को न तो कोई पढ़ता है और न ही ध्यान देता है। मुझे लगता है ये सब बी.एड., एम.एड. की परीक्षाओं प्रश्न पूछने के लिए हैं। इसलिए आयोग का बनना कोई बहुत बड़ी बात नहीं है। अभी उच्च शिक्षा में भी काफी आयोग बने हैं। अतः आयोग के दस्तोवज में कुछ लिखे होने से ज्यादा फर्क नहीं पड़ता। स्कूली शिक्षा के बारे में यशपाल समिति की 'शिक्षा बिना बोझ के' रिपोर्ट के बाद भी पाठ्यचर्या में किसी तरह के बदलाव नहीं आए। पाठ्यचर्या में बदलाव 2005 में आए। साथ ही यह भी देखना चाहिए कि 2005 की राष्ट्रीय पाठ्यचर्या के बाद क्या सचमुच बच्चों पर शिक्षा का बोझ कम हुआ है? क्योंकि कक्षा में तो वही होता है जैसा शिक्षक करते हैं। बोझ तो कक्षा में बनता है। पाठ्यचर्या दस्तावेज से तो बोझ नहीं बनता न! दस्तावेज, क्रियान्वयन की योजना और स्कूल में जो कुछ भी होता है उनके बीच संबंध होना चाहिए। चट्टोपाध्याय समिति में बहुत-सी बातें अच्छी लिखी हैं लेकिन शायद ही लोगों ने इसे पढ़ा हो।

प्रश्न : क्या चट्टोपाध्याय आयोग की अनुशंसाओं का किसी तरह का असर राज्यों में हुआ है?

उत्तर : मुझे नहीं लगता कि किसी तरह का असर हुआ है। यहां तक कि शायद ही किसी राज्य में पता हो कि इस तरह का कोई आयोग बना था। इस आयोग के बारे में कितने लोग जानते हैं, इसके बारे में यदि एक सर्वे किया जाए तो पता चलेगा कि स्थिति क्या है। हो सकता है कोठारी आयोग और राष्ट्रीय शिक्षा नीति के बारे में लोग फिर भी बता दें लेकिन इस आयोग के बारे में शायद ही

कोई बता पाए। इसकी एक वजह इसके बाद में 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति का आना हो सकता है, जिसने इस आयोग की रिपोर्ट को ढक लिया। स्कूली शिक्षा में राज्य सरकारें ज्यादा पहल करती हैं। इसके साथ ही सरकारों के बदलने से नीतियों के क्रियान्वयन पर असर पड़ता है। पाठ्यपुस्तकों पर होने वाली बहस को राजनैतिक पार्टियों की सरकारों में बदलाव के साथ अच्छे से समझा जा सकता है। भारतीय जनता पार्टी के समय में एक तरह की पाठ्यचर्या और पाठ्यपुस्तकें बनाई गईं और कांग्रेस ने आते ही उन्हें बदलने की प्रक्रिया शुरू कर दी। कांग्रेस का मानना था कि पाठ्यचर्या और पाठ्यपुस्तकों को विषरहित किया जाना चाहिए। इन कामों से राजनैतिक प्रक्रियाओं को थोड़ा दूर रखना चाहिए। चट्टोपाध्याय आयोग बना उसके बाद सरकार बदल गई तथा इसके साथ राष्ट्रीय शिक्षा नीति का काम शुरू हो गया और इससे पहले जो काम हो चुका था उसे भूल गए। अतः चट्टोपाध्याय आयोग की रिपोर्ट को ज्यादा महत्त्व नहीं मिला।

प्रश्न : भारतीय शिक्षा व्यवस्था में 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति बहुत ही अहम् है। इस दस्तावेज में और इसके आने के बाद शिक्षक की स्थिति में किस तरह के बदलाव नजर आए?

उत्तर : 1986 की नीति अहम है इसीलिए तो उसकी बात होती है। 1986 की नीति में यह लिखा है कि हर पांच साल में शिक्षा नीति को संशोधित किया जाना चाहिए। इसके लिए 1992 में राममूर्ति समिति का गठन किया गया लेकिन थोड़ा-बहुत जोड़ने के अलावा उन्होंने किसी तरह के संशोधन नहीं सुझाए और इसके बाद बदलाव के बारे में सोचा ही नहीं गया। 1986 की शिक्षा नीति में तो कहीं नहीं लिखा है कि विश्व बैंक या अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं से पैसा लेकर आरंभिक शिक्षा में सुधार करना चाहिए। लेकिन हमारे यहां 1992 से विश्व बैंक से पैसा लेना शुरू कर दिया और अब वे हमारे काम को नियंत्रित कर रहे हैं। इस नीति के आधार पर ऑपरेशन ब्लैकबोर्ड शुरू किया गया। यह चल ही रहा था कि बीच में जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम शुरू कर दिया। ऐसे कार्यक्रमों को बनाते वक्त हमारे यहां नीतिगत दस्तावेजों को नहीं देखते। एक जमाने में नीति को बहुत महत्त्व दिया जाता था। पहले पंचवर्षीय योजना और नीति को साथ-साथ रखते थे। नीति से पहले एक एप्रोच पेपर लिखा जाता था जिसमें सरकार की उस वक्त की नीति के बारे में बताया जाता था। अब नीति कोई बनाता है और पंचवर्षीय योजना कोई और। 1986 की शिक्षा नीति पंचवर्षीय योजना के बीच में आई थी और जैसे ही उसे क्रियान्वित करना शुरू किया वैसे ही दूसरी पंचवर्षीय योजना आ गई। पंचवर्षीय योजना को छोड़कर 1994 में जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम शुरू कर दिया गया और यह भी पंचवर्षीय योजना के बीच में आया। हमारे यहां निर्णय लेते वक्त नीति में क्या कहा गया है, इस पर ध्यान नहीं देते। इसलिए 1986 का असर तो हुआ है लेकिन यह असर बहुत सामान्य-सा है। किस क्षेत्र में प्रभाव हुआ है यह कहना मुश्किल है। इस नीति के क्रियान्वयन की योजना से कुछ संस्थाएं बनीं जिनमें से डाइट एक है। इसके अलावा मुझे कोई और प्रभाव नहीं दिखाई देता।

1986 की नीति के बाद तो कोई नई नीति आई नहीं। हम इसका मंत्र जाप तो करते रहते हैं लेकिन इसके कोई टिकाऊ प्रभाव दिखाई नहीं देते। शिक्षक और प्रधानाध्यापक के बारे में इस नीति और इसकी क्रियान्वयन योजना में जो कहा गया है वैसा तो कुछ भी नहीं हुआ। निर्णय प्रक्रियाओं के विक्रेन्द्रीकरण, स्कूल की स्वायत्तता और स्कूल की समिति होनी चाहिए; इसे तो हम भूल ही गए। 1986 से 2010 तक वे निर्णय क्रियान्वित क्यों नहीं हो पाए! ऐसा नहीं है कि इन्हें क्रियान्वित नहीं किया जा सकता था। हमारे यहां न तो नियमों के अनुसार चला जाता है और न ही नीतियों के लिए प्रतिबद्धता है। इस नीति में काफी प्रगतिशील तरीके से बातें कही गई हैं जैसे कि सामुदायिक सहभागिता के बारे में कहा गया है। बालिका शिक्षा के बारे में कहा गया है कि इस पर अलग से

नहीं बल्कि इसे महिला विकास के साथ जोड़कर देखा जाना चाहिए। यह भी कहा गया है कि महिला शिक्षिकाओं के बारे में क्या करना चाहिए, प्रशिक्षण कैसे होना चाहिए। इससे सोच में बदलाव जरूर आया है क्योंकि इसके साथ क्रियान्वयन की नीति भी बनाई गई थी।

इन सब बातों से लगता है कि हम शिक्षा को लेकर गंभीर हैं। हालांकि मैं फिर से यही कहना चाहता हूं कि जो नीति भारत सरकार बनाती है, उन पर राज्य सरकारें बहुत ज्यादा ध्यान नहीं देतीं। शिक्षा के अधिकार की बात अलग है क्योंकि यह कानून है और मौलिक अधिकार है, राज्य सरकारों को इसे लागू करना पड़ेगा। हालांकि राज्य सरकारें योजनाओं में ज्यादा दिलचस्पी दिखाती हैं क्योंकि इसके साथ पैसा भी आता है। नीतिगत निर्णयों को बिना राज्य सरकारों की प्रतिबद्धता के लागू करना बहुत ही मुश्किल है।

प्रश्न : खासतौर से यदि शिक्षक के संदर्भ में विचार करें तो?

उत्तर : 1986 की शिक्षा नीति में केन्द्र स्तर पर शिक्षक के केडर बनाने के बारे में कहा गया है। इसके बाद भी केन्द्र सरकार ने बहुत से दस्तावेज निकाले लेकिन नतीजा क्या रहा! यदि जमीनी स्तर पर देखें तो हरेक राज्य ने अपने-अपने तरीके से शिक्षक केडर को बर्बाद किया और भारत सरकार कुछ भी नहीं कर पाई। हालांकि यह सही है और मैंने लिखा भी है कि पैरा-टीचर्स को खुद भारत सरकार ने बढ़ावा दिया है। हम देख सकते हैं कि नीति कुछ कहती है और व्यवहार में किसी दूसरी चीज को बढ़ावा दिया जाता है।

जिसने ये निर्णय किए उसे तो चट्टोपाध्याय समिति के बारे में पता भी नहीं होगा। मैंने हाल ही एक अखबार में शिक्षा के अधिकार के क्रियान्वयन के बारे में लिखा है कि जिस दिन राज्य सरकारें इसे मानेंगी उस दिन यह जरूर लागू हो जाएगा। लेकिन राज्य सरकारों में इतनी जागरूकता नहीं आई है कि वे राष्ट्रीय स्तर की सोच अपनाएं। वे अपने छोटे-छोटे राजनैतिक मसलों में उलझी रहती हैं। ऐसा नहीं है कि कोई भी राज्य ठीक से काम नहीं कर रहा है। अपनी तरफ से कुछ राज्य अच्छा कर रहे हैं। तमिलनाडु, कर्नाटक जैसे राज्य अपनी तरफ से अच्छा काम कर रहे हैं। लेकिन यह कहना मुश्किल है कि उन्होंने राष्ट्रीय स्तर के सरोकारों से प्रेरणा ली है।

प्रश्न : आपने पैरा-टीचर के बारे में बात की है, निश्चित तौर पर यह शिक्षा की गुणवत्ता और शिक्षक की पेशेवर गरिमा के लिए प्रतिगामी कदम है लेकिन हमारे देश में मध्यप्रदेश, झारखण्ड, उत्तराखण्ड और छत्तीसगढ़; कुछ ऐसे राज्य हैं जहां पेशेवर और वेतनभोगी शिक्षकों की नियुक्तियां लंबे समय से नहीं हुई है। यह शिक्षक की स्थिति के लिए क्या चुनौतियां पेश करता है?

उत्तर : शिक्षक की स्थिति पर इसका सीधा असर होता है क्योंकि इससे शिक्षक की पेशेवरता खत्म होती है, जिसका अर्थ है कि अब कोई भी शिक्षक बन सकता है। शिक्षक बनने के लिए कुछ शर्तें पूरी होनी चाहिएं जैसे कि उनकी शैक्षिक योग्यता क्या हो, सेवापूर्व प्रशिक्षण कितने समय का हो, उनका वेतन कितना होना चाहिए और सेवा शर्तें किस तरह की हों। इन सबके तय होने के बाद ही उनकी स्थिति और पेशा तय होता है। जब यह माना जाने लगता है कि कोई भी शिक्षक बन सकता है और वह कुछ भी कर सकता है तो वह शिक्षक की पेशेवरता के लिए घातक होता है।

मुझे लगता है कि 1990 के बाद पिछले 35-40 वर्षों की मेहनत पर पानी फेर दिया गया। जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम ने भी इसमें अपनी भूमिका अदा की। इससे शिक्षक की हैसियत में गिरावट ही आई है। शिक्षक के केडर के बारे में मैं एक बात कहना चाहता हूं जो नीतिगत दस्तावेजों

में कभी नहीं आई। पूरी दुनिया में प्राथमिक स्कूलों में बच्चों की देखभाल और उनके विकास का विश्लेषण करने के लिए शिक्षक के साथ उनके सहायक होते हैं। इसका मतलब यह नहीं है कि समाजवादी व्यवस्था में सभी शिक्षक एक जैसे हो जाएं। सहायक का मतलब बिलकुल अनपढ़ होना नहीं है। वे बच्चों की देखभाल करते हैं, उनके विकास के बारे में सोचते हैं। छोटे बच्चों को सिखाने से ज्यादा उनके विकास पर सोचना चाहिए। किसी भी विकसित देश में जहां 30 बच्चों के छोटे से स्कूल होते हैं उनमें भी एक शिक्षक के साथ एक सहायक होता है। लेकिन हमारे देश में यह गलत सोच प्रचलित है कि सभी शिक्षक एक जैसे होने चाहिएं। ऐसा न तो दुनिया में कहीं हुआ है और न होगा। हमें शिक्षकों के बारे में उनके कौशल और ज्ञान के स्तर के आधार पर सोचना चाहिए। प्राथमिक स्कूलों में छोटे बच्चों की मदद करने के लिए सहायक शिक्षकों की बहुत जरूरत है और हमने इसके बारे में कभी सोचा ही नहीं। हम मानते हैं कि खास तरह का प्रशिक्षण लेने के बाद कोई व्यक्ति बड़ा शिक्षक बन गया है। हम मानकर चलते हैं कि आंगनबाड़ी या प्राथमिक कक्षाओं में किसी तरह की अकादमिक योग्यता और वेतन की जरूरत नहीं है क्योंकि हम मानते हैं कि बच्चे तो ऐसे ही बड़े हो जाते हैं।

पेशेवर केडर एकरूप नहीं होता और न हो सकता है। हमने कभी नहीं सोचा कि प्राथमिक स्कूल में भी अलग-अलग तरह के कौशल वाले शिक्षक हो सकते हैं और इसे पहचाने जाने की जरूरत है। हमारे देश में दस लाख से भी अधिक स्कूल हैं लेकिन हमने कभी शिक्षक के बारे में नहीं सोचा। किसी भी आयोग ने इतना गहराई से नहीं सोचा। शिक्षक के बारे में हमारा सारा विमर्श उसके रोजगार के इर्दगिर्द है। हमारे यहां शिक्षक प्रशिक्षण या वेतन को लेकर बहस चलती है कि दिल्ली में जितना वेतन मिल रहा है उतना ही बाकी जगहों पर मिलना चाहिए। लेकिन शिक्षक की क्षमता विकास पर कोई ध्यान ही नहीं देते या शिक्षक का विकास कैसे होना चाहिए, इस बारे में नहीं सोचते।

हम किताबी ज्ञान की ही बात करते हैं और अनुभव से अर्जित ज्ञान को महत्त्व नहीं देते। शिक्षक का केडर हमारी परिस्थिति में कैसा होना चाहिए, गांव और शहर में कैसा होना चाहिए, इस बारे में हमने नहीं सोचा। शिक्षक संघों की भांति बुद्धिजीवी भी शिक्षकों के वेतन, शिक्षकों की एकरूपता या अन्य सुविधाओं के लिए लड़ना चाहते हैं। लेकिन ऐसा मुमकिन नहीं है क्योंकि अच्छा स्कूल चलाने के लिए अलग-अलग तरह के लोगों की जरूरत है और शिक्षकों की भूमिका भी अलग-अलग हो सकती है।

शिक्षकों का अच्छा केडर बनाने की जरूरत है। अपने ही व्यवसाय में आगे बढ़ने के रास्ते खुलने चाहिएं, तभी उनमें प्रेरणा उपजेगी। गांव में एक व्यक्ति शिक्षक बनता है और 30 साल बाद उसी जगह पर सेवानिवृत्त हो जाता है। उनको कोई देखने वाला नहीं होता, उनके पास फटी पाठ्यपुस्तकों के अलावा कोई दूसरी चीज पढ़ने के लिए नहीं होती।

प्रश्न : यदि पैरा-टीचर्स को पहचान मिले तो क्या उससे पेशेवरता में गिरावट की समस्या से मुक्ति मिलेगी?

उत्तर : मेरा कहने का मतलब यह नहीं है कि वेतनभोगी शिक्षक बैठा रहे और उनकी जगह पर पैरा-टीचर लगा दें। स्कूल में पढ़ाएंगे तो योग्य शिक्षक ही लेकिन वहां दूसरे व्यक्ति - सहायक शिक्षक - की भी जरूरत है। आपने गांव की अनेक स्कूलों में देखा होगा कि 20 बच्चों की कक्षा में चार-पांच साल की उम्र के करीब 5-6 छोटे बच्चे बैठे होते हैं। उनकी देखभाल कौन करेगा? बाकी बच्चों के साथ उन्हें भी वही चीजें पढ़ाते रहते हैं। इतने छोटे बच्चों को पढ़ाने की जरूरत नहीं लेकिन शिक्षक उनके विकास पर कोई ध्यान ही नहीं देता। शिक्षकों के अनुभव से अर्जित ज्ञान को ध्यान में रखकर

उनके अलग-अलग स्तर बनाने चाहिएं।

हमारा फोकस शिक्षक पर होना चाहिए और इसे ध्यान में रखकर उनके स्तर बनाने चाहिएं कि शिक्षक और स्कूल, शिक्षक और बच्चों का संबंध कैसा होना चाहिए। शिक्षकों के कैरियर का विकास किस तरह होना चाहिए, इसकी प्रगति के बारे में तो हमने ठीक से सोचा ही नहीं है। चट्टोपाध्याय समिति ने इस बारे में कुछ लिखा है लेकिन बाद में किसी ने इस पर ध्यान ही नहीं दिया।

प्रश्न : हम यह मान सकते हैं कि सभी राज्यों में शिक्षक की स्थिति एक जैसी नहीं है। आपको क्या लगता है कि किन राज्यों में शिक्षक की स्थिति बेहतर है और किन राज्यों में बदतर है? और इसके क्या कारण हो सकते हैं?

उत्तर : शिक्षक तो सरकारी कार्मिक हैं। जिन राज्यों में सरकार अच्छा काम करती है वहां सभी कर्मचारियों की परिस्थितियां बेहतर होती हैं इसलिए शिक्षक की भी बेहतर होती है। मुझे लगता है कि यह आर्थिक विकास के साथ जुड़ा हुआ मामला नहीं है। यह वास्तव में सरकारी और प्रशासनिक व्यवस्था का काम है। अतः सरकार जैसा काम करती है वैसा ही शिक्षक का जीवन चलता है। शिक्षक की बहुत-सी समस्याएं होती हैं। हरेक राज्य में उनकी हजारों समस्याएं उलझी हुई हैं और उन्हें कोई देखने वाला नहीं है। इसलिए शिक्षकों की समस्याओं के निपटारे की व्यवस्था होनी चाहिए। शिक्षक के वेतन का ही मामला नहीं है। वह सिर्फ कक्षा में पढ़ाने वाला एक इंसान ही नहीं है। उनकी स्वास्थ्य संबंधी और मनोवैज्ञानिक समस्याएं भी होती हैं।

शिक्षक का सम्मान तभी हो सकता है जब हम शिक्षकों की अकादमिक जरूरतों को पूरा करें। जो शिक्षक पढ़ना और पढ़ाना चाहते हैं उनको हम सुविधा नहीं देते। ...हम शिक्षकों को तकनीकी तौर पर प्रशिक्षित करके सोचते हैं कि काम हो गया। ऐसे शिक्षक प्रशिक्षण नहीं हो सकता। जब तक शिक्षक के व्यक्तित्व में परिवर्तन लाने के प्रयास नहीं करेंगे तब तक ऐसे प्रशिक्षणों का कोई मतलब नहीं है।

शिक्षक की अनेक समस्याएं बहुत ही मामूली होती हैं कि उसे छुट्टी चाहिए लेकिन छुट्टी नहीं मिली। छुट्टी पर जाने की एवज में पैसा काट लिया गया तो वह लड़ रहा है और 10 साल से केस चल रहा है। उनका प्रमोशन होना था जो नहीं हुआ। कुछ राज्यों ने इनके निपटारे की अच्छी व्यवस्थाएं बनाई हैं। मुझे लगता है कि जिन राज्यों ने इन समस्याओं पर सोचा है वहां शिक्षक की स्थिति अच्छी है। यदि अच्छे शिक्षक बनाने हैं तो उनके ऊपर निवेश करना पड़ेगा। इसके लिए सिर्फ प्रशिक्षण में ही निवेश नहीं करना होगा बल्कि स्वास्थ्य, आवास आदि पर भी निवेश करना होगा।

मैं कुछ साल पहले राजस्थान गया। वहां एक स्कूल में पहुंचने के लिए तीन-चार किलोमीटर पैदल चलकर जाना पड़ा और उन दिनों बहुत गर्मी थी। उस स्कूल में एक महिला शिक्षिका थी। बच्चों के माता-पिता भी आए हुए थे। कुछ लोगों का कहना था कि शिक्षिका अच्छा पढ़ाती हैं और बच्चे भी खुश हैं। लेकिन कुछ का कहना था कि यह शिक्षिका कभी-कभी स्कूल नहीं आती और कई बार तो जल्दी भी चली जाती है। मैंने अलग से उस शिक्षिका से बात की तो उसने बताया कि यहां आने और जाने के लिए एक ही बस है और इतना पैदल चलकर भी आना होता है। जब मैंने पूछा कि यदि यहां रहने की व्यवस्था हो जाए तो क्या आप समय से पहुंचेंगी? उसने कहा कि मेरे ऊपर घर की जिम्मेदारियां भी हैं। घर के लोग नौकरी छोड़ने को भी कहते हैं। काम छोड़ने पर मुझे घर बैठे रहना पड़ेगा लेकिन मैं मानती हूं कि मुझे कुछ आता है जिसे बच्चों को भी सिखाऊं। शिक्षक की इन परिस्थितियों के बारे में तो कोई सोचता ही नहीं है। अतः इस बारे में भी सोचने की जरूरत है।

हमारे यहां शिक्षक प्रशिक्षण के लिए पैकेज बना देते हैं और प्रशिक्षण हो जाता है। मैं एक बार पुणे के पास इण्डियन इन्सटीट्यूट ऑफ एज्युकेशन नाम की एक संस्था में गया था जिसमें चित्रा नाईक काम करती थीं। वहां प्रशिक्षण के लिए बहुत से प्रधानाध्यापकों को बुलाया गया था। प्रशिक्षण शुरू हुआ तो आधे दिन चित्रा नाईक ने उनसे अपने स्वास्थ्य और व्यक्तिगत जीवन के बारे में बताने को कहा। इसमें बहुत-सी बातें निकलकर आईं। मैंने चित्रा जी से पूछा कि यह क्या किया आपने? उन्होंने बताया कि यह सभी 50 की उम्र के बाद प्रधानाध्यापक बने हैं और छोटे-छोटे गांवों में रहते हैं। 50 साल के बाद सभी को किसी न किसी तरह की स्वास्थ्य संबंधी समस्याएं होती हैं। किसी को हार्ट प्रोब्लम है, किसी की पीठ में दर्द रहता है। इनको हम यहां 10 दिन के लिए बुलाते हैं। यह भी तो इंसान हैं। इनके बारे में भी तो हमें सोचना चाहिए। ऐसा थोड़े हो सकता है कि आते ही हम इन्हें पढ़ाना शुरू कर दें। इसीलिए हमने यहां एक योग शिक्षक बुलाया है। वह दस दिन जरूरत के हिसाब से काम करेगा। यहां पढ़ाई भी होगी और योग भी होगा। मैं इस उदाहरण से बताना चाहता हूं कि तमाम आयोगों के बावजूद हम शिक्षक के बारे में नहीं सोचते कि वे किस परिस्थिति में काम करते हैं और इनको क्या जरूरत है।

एक बार हम मध्यप्रदेश के काफी छोटे गांव के एक स्कूल में गए थे। वहां 30-35 बच्चे बैठे थे और एक शिक्षक पढ़ा रहा था। शिक्षक अच्छा पढ़ा रहा था और बच्चे खुश दिख रहे थे। मैंने शिक्षक से कहा कि आपका स्कूल बहुत अच्छा है। मैंने पूछा कि यहां एक दूसरा शिक्षक भी होना चाहिए। उसने कहा, ''मैं हूं न। मैं पढ़ाता हूं न।'' उसने किसी तरह की शिकायत भी नहीं की। लेकिन बाद में उसने कहा, ''यह गांव तो शहर से बहुत दूर है और यहां कुछ नहीं मिलता। कोई अखबार भी नहीं मिलता। सब्जी लेने भी 15-20 किलोमीटर जाना पड़ता है। पिछले हफ्ते शहर जाने पर मैंने हिन्दी के एक समाचार पत्र में पढ़ा कि अमेरिका का कोई अंतरिक्षयान ऊपर गया है और हादसे में सभी जल गए। उसमें एक भारतीय महिला भी थी। मैं यह सब अपने बच्चों को पढ़वाना चाहता हूं। मुझे यह सब कहां मिलेगा? हमारे बच्चों में से भी कोई बड़ा होकर अंतरिक्ष में जा सकता है।''

मुझे लगा ऐसे शिक्षक भी हैं हमारे यहां। हमारे यहां डाइट हैं, संकुल संदर्भ केन्द्र और ब्लॉक शिक्षा अधिकारी कार्यालय हैं लेकिन इस शिक्षक की मदद करने वाला कोई नहीं है। यह शिक्षक इतना उत्सुक है, आदर्शवादी है और बच्चों को पढ़ाना चाहता है लेकिन मेरे पास इसका कोई जवाब नहीं था। मैं उसकी किसी तरह की मदद नहीं कर सकता, यह सोचकर मुझे बहुत शर्म आई। हम शिक्षक के बारे में बड़ी-बड़ी बात करते हैं लेकिन उसे किसी तरह की सुविधा नहीं देते। अच्छे शिक्षकों का हम सम्मान नहीं करते। जो अच्छे शिक्षक हैं और कक्षा में अच्छे तरीके से पढ़ाते हैं, उनके बारे में कोई नहीं लिखता और जो कक्षा में नहीं आते उनके बारे में ही लिखते हैं। जो शिक्षक राजनैतिक रूप से सक्रिय होते हैं उनको एनसीईआरटी या राष्ट्रपति पुरस्कार देते हैं और मानते हैं कि शिक्षक का सम्मान हो गया। शिक्षक का सम्मान तभी हो सकता है जब हम शिक्षकों की अकादमिक जरूरतों को पूरा करें। जो शिक्षक पढ़ना और पढ़ाना चाहते हैं उनको हम सुविधा नहीं देते। हमारे देश में ऐसे हजारों शिक्षक हैं लेकिन इनके बारे में कुछ सोचा ही नहीं जाता है। हम शिक्षकों को तकनीकी तौर पर प्रशिक्षित करके सोचते हैं कि काम हो गया। ऐसे शिक्षक प्रशिक्षण नहीं हो सकता। जब तक शिक्षक के व्यक्तित्व में परिवर्तन लाने के प्रयास नहीं करेंगे तब तक ऐसे प्रशिक्षणों का कोई मतलब नहीं है।

प्रश्न : आपने कहा कि जो राज्य सरकारें कर्मचारियों के काम पर ज्यादा ध्यान देती हैं वहां शिक्षक की स्थिति भी बेहतर है। अगर वर्तमान परिदृश्य में देखें तो कौनसे राज्य ऐसे हैं जहां शिक्षक की स्थिति बेहतर है और कौनसे ऐसे हैं जिनमें खराब है?

उत्तर : शिक्षक को कोई समग्रता में नहीं देखता। हमारे कार्यक्रम भी नहीं देखते। शिक्षक की स्थिति को अलग-अलग दृष्टि से देखना चाहिए। यदि शिक्षक के वेतन की ओर से देखें तो हमारे यहां स्थिति काफी अलग-अलग है। कुछ राज्यों ने वेतन के मानदण्ड तय किए हैं, वहां पैरा-टीचर नहीं हैं, वहां शिक्षकों के स्थानान्तरण के नियम हैं और स्थानान्तरण उद्योग नहीं चलता। यानी, भ्रष्टाचार कम है और वहां शिक्षक की स्थिति बेहतर है। लेकिन इसका कोई मतलब नहीं है और मुझे नहीं लगता कि इससे कुछ सुधरेगा। इससे शिक्षक के व्यक्तिगत या पारिवारिक जीवन में कुछ सुधार आ सकता है लेकिन शिक्षण नहीं सुधरेगा। शिक्षण तभी सुधरेगा जब शिक्षक में परिवर्तन के बारे में सोचेंगे और शैक्षिक कार्यक्रमों में उन्हें सुविधाएं मुहैया करवाएंगे। मैंने अभी जिस शिक्षक की बात कही उसे बच्चों को पढ़ाने के लिए अखबार और बाकी सामग्री चाहिए जो उसे नहीं मिल रही है और हम उसकी व्यवस्था भी नहीं कर रहे हैं। मैं नहीं कहना चाहता कि किसी राज्य ने इसके बारे में नहीं सोचा क्योंकि राष्ट्रीय स्तर पर भी इसके बारे में ज्यादा ध्यान नहीं दिया गया। कुछ राज्यों में भौतिक सुविधाएं बेहतर हैं।

बच्चों के लिए जिस रचनात्मकता की बात की जाती है उसकी जरूरत शिक्षकों के लिए भी है। जैसा मैंने पहले कहा कि शिक्षकों की विविधता को स्थान देना चाहिए और समावेशी व्यवस्था होनी चाहिए तो शिक्षकों की पढ़ाई और प्रशिक्षणों में भी सामाजिक रचनात्मकता होनी चाहिए। प्रशिक्षण तो सभी जगह एक ही जैसे हैं। कुछ राज्यों में बहुत बुरा भी है। शैक्षिक कार्यक्रम में सुधार लाने के लिए जो शिक्षक उत्सुक हैं उनको मदद देने की जरूरत है। दक्षिण भारतीय राज्यों में भौतिक सुविधाएं संभवतः बेहतर हैं। एक-दो राज्य और हो सकते हैं जहां वेतन ठीक से देते हैं और पैरा-टीचर नहीं हैं।

प्रश्न : यदि हम एक बार फिर शिक्षा के अधिकार के संदर्भ में शिक्षक की स्थिति को समझना चाहें तो क्या इससे शिक्षक के पेशे से जुड़ी चुनौतियां कम हो पाएंगी?

उत्तर : हमारे देश में शिक्षक के पेशे को सुधारने के लिए पहले तो खुद शिक्षक को भी सुधरने के बारे में सोचना होगा। शिक्षकों के सशक्तिकरण के प्रयास बाहर से जरूर होने चाहिएं लेकिन शिक्षकों के अन्दर से भी आना चाहिए। हमें पूरे शिक्षक केडर के बारे में सोचना होगा। शिक्षकों में पेशेवरता लानी चाहिए। हमारे यहां पाठ्यचर्या केन्द्र में एनसीईआरटी और राज्य में एससीईआरटी बनाती हैं। वहां विशेषज्ञ आकर उसे बनाते हैं लेकिन प्राथमिक स्कूल शिक्षक उसे अपनाते हैं या नहीं, इसके बारे में कोई पूछने वाला नहीं है। मुझे लगता है कि शिक्षकों का सशक्तिकरण तब होगा जब वे खुद पाठ्यचर्या तय करेंगे कि उनके बच्चों के लिए क्या ठीक है और क्या नहीं या क्या पढ़ाना चाहिए और क्या नहीं। बच्चों के लिए क्या अच्छा है, इसके बारे में शिक्षक और माता-पिता ज्यादा बेहतर जानते हैं।

शिक्षा के अधिकार में शिक्षक के बारे में जो लिखा है उसे कानूनी तौर पर ठीक किया जा सकता है लेकिन शिक्षक में भी एक उत्साह होना चाहिए। कानून से सब तो ठीक होगा नहीं। शिक्षक समझें कि हमारा उत्तरदायित्व क्या है, जिम्मेदारी क्या है और हम इसको जरूर करें। शिक्षकों में इसे लाने के लिए मेहनत करनी पड़ेगी, इसे प्रशिक्षण में लाना होगा। जब तक शिक्षण के हालात ऐसे ही रहेंगे शिक्षक के पेशे में सुधार नहीं आएगा। यदि हम आज किसी राजनेता या प्रशासनिक अधिकारी से कहें कि शिक्षक को ज्यादा सुविधाएं देनी चाहिएं तो बोलेंगे कि इससे क्या फायदा होगा, शिक्षक पढ़ाते तो हैं नहीं? अभी दिल्ली के नगरपालिका स्कूलों में सभी तरह की सुविधाएं हैं, शिक्षक फिर भी नहीं पढ़ाते। इस बारे में जवाब देने के लिए हमारे पास कुछ भी नहीं है। इसलिए मेरा मानना है कि शिक्षण को बेहतर करने के प्रयास बाहर से भी होने चाहिएं लेकिन शिक्षकों की तरफ से भी पहल होनी चाहिए।

प्रश्न : शिक्षक की तैयारी का मसला महत्त्वपूर्ण है, इसमें आप विश्वविद्यालय की भूमिका को किस तरह देखते हैं?

उत्तर : मैं मानता हूं कि शिक्षक की तैयारी में विश्वविद्यालय की भूमिका महत्त्वपूर्ण है और इसके बारे में अनेक बार लिखा भी गया है। चट्टोपाध्याय आयोग एवं उसके बाद में भी लिखा गया है। हमारे देश में अभी तक प्राथमिक शाला के शिक्षकों को विश्वविद्यालय से बाहर ही रखा गया है। इन शिक्षकों की तैयारी के लिए विश्वविद्यालयों को आगे आना चाहिए। इस बारे में हमने पंचवर्षीय योजना में भी लिखा है। मेरा मानना है कि इसके लिए विश्वविद्यालय में भी बदलाव लाना चाहिए। जब हमने आरंभिक शिक्षा के शिक्षकों को विश्वविद्यालय से जोड़ने के लिए बहस की तो कुछ लोगों ने पूछा कि बी.एड़ तो विश्वविद्यालय के साथ ही जुड़ा हुआ है, उसमें क्या अच्छा हो रहा है? उन लोगों का मानना है कि आरंभिक शिक्षक प्रशिक्षणों से बी.एड़. बहुत बुरा है। मेरे पास इसका कोई जवाब नहीं है। मुझे नहीं लगता कि सिर्फ विश्वविद्यालय के साथ जुड़े होने से शिक्षक प्रशिक्षण अच्छा हो जाएगा। क्योंकि ये विश्वविद्यालय खुद तो कुछ सीखते नहीं हैं।

मैं यह कहना चाहता हूं कि विश्वविद्यालयों को ज्ञान के सृजन, उत्पादन में लगना चाहिए। तभी हम कोई नई चीज शिक्षक को दे पाएंगे और उसे प्रभावित एवं प्रेरित कर पाएंगे। यदि हम खुद एक कुंजी लेकर पढ़ाएंगे तो उससे कुछ भला होने वाला नहीं है। यह फायदा तभी हो सकता है जब विश्वविद्यालय खुद भी विकास कर रहे हों और विश्वविद्यालय के शिक्षक या प्रोफेसर खुद पढ़ रहे हों, लिख रहे हों, सोच रहे हों। लेकिन यह समस्या बहुत बड़ी है क्योंकि यह सिर्फ शिक्षा में नहीं हो सकता है, सभी स्तरों पर होना चाहिए। आज जिस तरह से लोग बी.एस.सी., बी.ए. और बी.एड़. करके आते हैं, वे आधा पन्ना तक नहीं लिख सकते। हम बच्चों से तो चौथी-पांचवीं कक्षा में लिखवाते हैं, लेकिन शिक्षक खुद नहीं लिख पाते और जो लिखते हैं उसमें बहुत-सी गलतियां होती हैं। यह सब लोग भी तो विश्वविद्यालय से पढ़कर ही आए हैं! सुधार तो जरूर हो सकता है लेकिन अभी यह बहुत दूर है।

प्रश्न : अधिकतर बी.एड़. कॉलेज विश्वविद्यालय से संबद्ध होते हैं। संभवतः कोई भी विश्वविद्यालय अपने परिसर में बी.एड़. कोर्स खुद नहीं चलाता। वहां जो भी पढ़ाया जाता है वह एक-दूसरे विषय से असंबद्ध होता है। यदि यह कोर्स विश्वविद्यालय परिसर में चलाया जाए तो यह संभव है कि विभिन्न अनुशासन के शिक्षक या प्रोफेसर आकर इसमें मदद कर सकते हैं जैसे मनोविज्ञान, दर्शनशास्त्र और समाजशास्त्र इत्यादि के। विभिन्न अनुशासनों के सम्मिलित प्रयासों से इसे समग्रता में देखने में मदद मिल सकती है। आप इसके बारे में क्या सोचते हैं?

उत्तर : मैं मानता हूं कि अलग-थलग चल रहे सभी शिक्षक शिक्षा कॉलेजों को बंद किया जाना चाहिए। शिक्षक शिक्षा तभी अच्छी हो सकती है जब वह बाकी अनुशासनों के साथ चले और इसके संस्थान अन्तर-अनुशासनात्मक हों। इसकी कई वजह हैं, अलग-थलग चल रहे कॉलेजों में अच्छा पुस्तकालय, पढ़ने के लिए अच्छा वातावरण और अन्य सुविधाएं नहीं होतीं। ऐसा नहीं है कि यह सिर्फ विश्वविद्यालय के साथ ही हो सकता है। यह सभी सुविधाएं होनी चाहिएं। बी.एल.एड़. कोर्स तो विश्वविद्यालय में नहीं चलता लेकिन वहां वातावरण और अन्तर-अनुशासनात्मक शिक्षण की सुविधाएं उपलब्ध हैं।

प्रश्न : अभी शिक्षा के अधिकार कानून के तहत बहुत से शिक्षकों की आवश्यकता है और यह नियमों के अनुसार होना है। ऐसे में दूरस्थ शिक्षा के फलने-फूलने के पूरे आसार हैं। आप शिक्षक की तैयारी के लिए दूरस्थ शिक्षा को कैसे देखते हैं?

उत्तर : मेरा मानना है कि हम जरूरत को समझें। हमें शिक्षक की योग्यता ठीक करनी चाहिए, अन्यथा हम भविष्य के लिए गलती कर रहे होंगे। ऐसे ही कोई भी शिक्षक नहीं बन जाना चाहिए। दूरस्थ शिक्षा नियमित शिक्षण की जगह नहीं ले सकती। शिक्षक के विकास के लिए तो नियमित शिक्षण ही जरूरी है लेकिन आज की परिस्थिति में हमें एक हद तक दूरस्थ शिक्षा पर निर्भर होना ही पड़ेगा। सिद्धान्ततः

ऐसा नहीं है कि दूरस्थ शिक्षा बुरी ही हो लेकिन हमारे देश में यह बुरी है। खासतौर पर शिक्षक शिक्षा के संदर्भ में।

हमारे यहां बाकी क्षेत्रों की गैर-ईमानदारी दूरस्थ शिक्षा के क्षेत्र में भी चली आई है। एक वयस्क बहुत हद तक स्वयं सीख सकता है। उससे कुछ अन्तःक्रिया की जरूरत है। इसके लिए सामग्री अच्छी होनी चाहिए और पढ़ने के लिए समय और फीडबैक देना चाहिए। जैसा होना चाहिए उसे अपनाते नहीं हैं क्योंकि बेईमानी है। इसका मतलब यह भी नहीं है कि जो नियमित बी.एड़. कॉलेज चलते हैं वे बेहतर हैं। वे इससे भी बुरे हैं। वहां दूरस्थ शिक्षा से ज्यादा पैसा लिया जाता है और प्रमाण पत्र बांटे जाते हैं। दूरस्थ शिक्षा में कम से कम एक किताब तो देते हैं। दूरस्थ शिक्षा की स्थिति आज के हालात की एक सामान्य समस्या को ही दर्शाती है।

प्रश्न : शिक्षा के अधिकार कानून के प्रावधानों के तहत शिक्षकों की नियुक्तियां होनी हैं। अभी जिन प्रदेशों में शिक्षकों की सबसे ज्यादा कमी है उनमें उत्तर प्रदेश और राजस्थान अग्रणी राज्य हैं। इन राज्यों के समक्ष किस तरह की परेशानियां हैं?

उत्तर : इतने सालों से कुछ नहीं किया तो आज परेशानी होगी ही। शिक्षक के पदों को खाली रखो, किसी का चयन नहीं करो और शिक्षकों के स्थानान्तरण से पैसा बनाओ, इस सबसे तो समस्या होगी ही। राजस्थान में स्थानान्तरण अवधि 2-3 महीने की होती है और एक तबादला उद्योग चलता है। इन राज्यों में आज जो परिस्थिति है वह गलत काम की वजह से है। इन राज्यों में पिछले 10-15 सालों से शिक्षकों का चयन ही नहीं किया गया है।

इसके चलते इन प्रदेशों में आज स्थिति यह हो गई है कि शिक्षा के अधिकार के तहत शिक्षक-बालक अनुपात को 40 से 30 में लाना है और पहले से भी शिक्षकों के बहुत पद खाली हैं। मेरे अनुसार इस समस्या का समाधान यह है कि हर राज्य में एक अधिकार प्राप्त टास्क फोर्स बनाई जाए जो अपने राज्य की परिस्थिति देखकर निर्णय ले कि इस परिस्थिति में क्या किया जाना चाहिए, कितने नए संस्थान बनाए जाने चाहिएं। यह करने के लिए राज्य स्तर पर उत्साह और प्रतिबद्धता होनी चाहिए। अभी तो हमारे पास चार साल का समय है। मैं मानता हूं कि शिक्षक शिक्षा के क्षेत्र में बेहतर किया जा सकता है। इसके लिए कुछ हद तक दूरस्थ शिक्षा को अपनाना होगा और साथ ही नियमित पाठ्यक्रमों को भी बेहतर करना होगा। लेकिन इसके बारे में राजस्थान या उत्तर प्रदेश में कोई नहीं सोच रहा है। इसके बजाय सोचा यह जा रहा है कि इतने शिक्षकों को किस तरह नियुक्त किया जाए। नियुक्ति तो शिक्षक के लिए भी अच्छी है और नियोक्ता के लिए भी। लेकिन स्कूलों में अच्छा शिक्षण होना चाहिए इसलिए शिक्षक की तैयारी के बारे में कोई नहीं सोच रहा है।

प्रश्न : बारहवीं पंचवर्षीय योजना में शिक्षक को किस तरह से देखा जा रहा है?

उत्तर : अभी इस बारे में खास काम नहीं हुआ है लेकिन यह सोच रहे हैं कि शिक्षक शिक्षा के लिए अलग से एक कार्य समूह होना चाहिए। सर्व शिक्षा अभियान को शिक्षा के अधिकार कानून के तुल्य बनाने के लिए अनिल बोर्दिया की अध्यक्षता में एक समिति बनी थी जिसने बताया है कि किन राज्यों में क्या किया जाना चाहिए। उस समिति ने शिक्षक शिक्षा के बारे में काफी कुछ बताया है। कुछ राज्यों में शिक्षकों की कमी है और शिक्षक शिक्षा संस्थानों की भी कमी है। कुछ राज्यों में शिक्षक कम हैं लेकिन शिक्षक शिक्षा संस्थानों को ठीक करने से जरूरत को पूरा किया जा सकता है। इस बारे में हर राज्य को अलग-अलग सोचना पड़ेगा। बारहवीं पंचवर्षीय योजना का तो अभी एप्रोच पेपर भी ठीक से नहीं लिखा गया है।

प्रश्न : आज के साक्षात्कार में आपने बार-बार ध्यान दिलाया है कि शिक्षा के क्षेत्र में एक बड़ी दुविधा नीतिगत विमर्श के खुशनुमा प्रावधान और धरातल पर उनका नहीं के बराबर असर है। आप नीतिगत विमर्श और क्रियान्वयन के फर्क को कैसे देखते हैं?

उत्तर : हमारे यहां नीतिगत दस्तावेज बहुत बनते हैं और विमर्श भी बहुत होता है। नीतिगत दस्तावेज से क्या होता है, वह नीति तो नहीं बन जाता क्योंकि नीति तो तभी होती है जब हम उसे आचरण में लाते हैं। बहुत-सी चीजें जो नीति में लिखी जाती हैं उनमें से अनेक तो शायद आचरण में हो भी नहीं सकतीं। अनेक बार कहा जाता है कि हमारे यहां नीतियां तो बहुत अच्छी होती हैं लेकिन क्रियान्वयन ठीक से नहीं होता। मैं इसे मानने के लिए तैयार नहीं हूं। इसका मतलब है कि जो बड़े लोग नीति बनाते हैं वे अच्छे हैं और अच्छी नीति बनाते हैं और जो नीचे काम करते हैं वे सभी बुरे हैं। मैं इतने सालों से नीति और योजनाओं के बारे में काम रहा हूं और मुझे लगता है कि हमारी नीति और योजनाएं ही गलत हैं। जिस हद पर सोचकर इन्हें बनाना चाहिए, वैसा नहीं करते और बड़ी-बड़ी बातें लिखते हैं। अच्छी बातें लिखने से क्या होता है? हम इन दस्तावेजों में मंत्र की तरह पूर्णता लाना चाहते हैं ताकि बाद में मंत्र जाप करते रहें। इसका कोई अर्थ नहीं है। जैसा कि मैंने पहले कहा कि शिक्षक का केडर बनना चाहिए, सेवा और सेवा की व्यवस्था बननी चाहिए; अभी तक वह नहीं बनी है। ऐसा करने से शायद शिक्षक में सुधार भी हो सकता है। उनकी प्रेरणा का स्तर भी बढ़ सकता है। हमने 2005 के शिक्षा के अधिकार कानून के प्रारूप में सुझाव दिया था कि एक शिक्षक को एक स्कूल में नियुक्त करें बजाय पूरी व्यवस्था के लिए करने के। इससे स्कूल के बारे में अपनापन और स्वामित्व बनेगा। इस सुझाव को किसी ने माना नहीं। अभी तो सभी शिक्षक कहते हैं कि यह सरकारी स्कूल है, मेरा थोड़े ही है।

मैं यह भी कहना चाहता हूं और मुझे यह समझ में भी नहीं आता है कि यदि एक जगह में 15 बच्चे होंगे तो भी दो शिक्षक होने चाहिएं! क्या एक शिक्षक 15-20 बच्चों को नहीं पढ़ा सकता? एक सहायक शिक्षक जरूर हो सकता है लेकिन दो शिक्षकों की जरूरत नहीं है। मैं योजना संस्थान में हूं इसलिए इसके आर्थिक पहलू पर भी हमें सोचना चाहिए। मैं यह भी मानता हूं कि हर जगह छोटे-छोटे स्कूल खोलना गलत है। जिस हद तक हो सके इसे समेकित करना चाहिए तभी आर्थिक दृष्टि से सही स्कूल बनेंगे। तभी हम स्कूलों को प्रयोगशाला, पुस्तकालय, आदि सुविधाएं दे सकते हैं। क्या आप मान सकते हैं कि 15 बच्चों के स्कूल में प्रयोगशाला और पुस्तकालय दे सकते हैं? जो लोग शिक्षक के ऊपर सभी गलतियां डालना चाहते हैं, वे ऐसा कहते हैं। शिक्षक भी गलतियां करते हैं, मैं इसे मानने के लिए तैयार हूं। जो शिक्षक समय पर नहीं आते या अनुपस्थित रहते हैं उन्हें दण्ड मिलना चाहिए। विश्व बैंक की रिपोर्ट में शिक्षक की अनुपस्थिति के बारे में जो कहा गया है वह सही है क्योंकि हमने भी इसके बारे में तो पता किया तो नतीजे वही आ रहे हैं। हमें इस व्यवस्था को ठीक करना चाहिए, अनुशासन लाना चाहिए, इसे मैं मानने को तैयार हूं। नीति विमर्श बहुत अच्छा चलता है लेकिन नीचे जमीनी स्तर पर इसका क्रियान्वयन नहीं होता; इसे मैं ठीक नहीं मानता। ◆